



## International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2022; 8(1): 292-295

© 2022 IJSR

[www.anantaajournal.com](http://www.anantaajournal.com)

Received: 30-11-2021

Accepted: 10-12-2022

डॉ० राज कुमार राय

पूर्व गवेषक, स्नातकोत्तर संस्कृत  
विभाग, ललित नारायण मिथिला  
विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार,  
भारत

### समाज एवं संस्कृतशास्त्र

डॉ० राज कुमार राय

#### प्रस्तावना

भारत के सांस्कृतिक जीवन में मानव-समाज के कार्य और विचार दो दिशाओं की ओर अग्रसर हुए हैं। वे दिशाएँ हैं- लौकिक और पारलौकिक, शारीरिक और आध्यात्मिक। भारतीय समाज में प्राचीन काल से यह मान्यता रही है कि व्यक्ति केवल शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के ही प्रयास नहीं करते हैं, बल्कि आत्मोत्थान के मार्ग पर भी अग्रसर होते हैं। शारीरिक एवं आत्मिक विकास में संतुलन होना चाहिए। भारत के सांस्कृतिक जीवन का यही दृष्टिकोण, इस मानक-समाज में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करता है। यह दृष्टि भारतीय वैदिक ऋषियों से मिली है, यह दृष्टि ही भारतीय संस्कृति का प्राणाधार है। सांस्कृतिक जीवन का मौलिक तत्त्व जैसे सामाजिक कृतियों का बोध कराते हैं, जिनका महत्त्व क्षणिक नहीं होकर शाश्वत होता है। सांस्कृतिक जीवन की कृतियाँ वैसी होती हैं, जिन्हें किसी भी समाज में कभी भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम, पारिवारिक सौहार्द, सामाजिक एकता, दीन दुःखियों के प्रति सहानुभूति और सहायता, परोपकारिता, परिश्रमी बनना, सत्य पर चलना, मित्रवत् दृष्टि रखना, आतिथ्य सत्कार, विश्वन्धुत्व की भावना, सच्चरित्रता आदि कुछ जैसे तत्त्व हैं, जो सुसंस्कृतिक जीवन के लिये अपेक्षित ही नहीं बल्कि अनिवार्य हैं। हमारे वैदिक ऋषियों ने सांस्कृतिक जीवन के लिए जिन तत्त्वों को आवश्यक समझा है, उनमें से कुछ पर हम विचार कर सकते हैं।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः<sup>1</sup>

भूमि हमारी माता है, और हम इसके पुत्र हैं।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं<sup>2</sup>

हम मिलकर रहे साथ-साथ चले और बोले।

न स सखा यो न ददाति सख्ये<sup>3</sup>

वह मित्र मित्र नहीं है, जो समय पड़ने पर मदद नहीं करता है।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवति संयतः<sup>4</sup>

पुत्र पिता के व्रत का पालन करने वाला तथा माता का आज्ञाकारी हो।

मा जीवेभ्यः प्रमदः<sup>5</sup> प्राणियों के प्रति वेपरवाह मत बनों।

Corresponding Author:

डॉ० राज कुमार राय

पूर्व गवेषक, स्नातकोत्तर संस्कृत  
विभाग, ललित नारायण मिथिला  
विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार,  
भारत

इन बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे समाजशास्त्री ऋषि-मुनियों ने भारत के सांस्कृतिक जीवन में सामाजिक सौहार्द और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना स्थापित करने के प्रति सतर्क थे। वे मानते थे कि संसार के सभी मानव एवं अन्य प्राणिसमुदाय एक ही परम पुरुष की सन्तान हैं। इसलिए सभी को परस्पर मिलकर एक-दूसरे की सहायता करते हुए रहना चाहिए। उनकी उद्घोषणा थी-

एको विश्वस्य भुवनस्य राजा<sup>6</sup>

एक परमप्रभु ही सम्पूर्ण विश्व का स्वामी है और अन्ततोगत्वा हम सभी को उसी परमप्रभु की गोद में जाना है-

परऽव्यये सर्वे एकीभवन्ति<sup>7</sup>

इस धरणा के विकास के लिए अध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा आत्मोत्थान करना परम आवश्यक माना गया है। इस कार्य को उपनिषदों में सम्पादित किया गया है। उपनिषद-काल में ऋषियों के आत्मोत्थान के लिए शिष्टाचार का एक विधन बनाया गया, जिसे अपनाकर कोई भी व्यक्ति अपने सांस्कृतिक जीवन में लौकिक एवं आध्यात्मिक उन्नति कर जीवन के अंतिम लक्ष्य, 'मोक्ष' को प्राप्त कर सकता था। समुन्नत सांस्कृतिक जीवन के लिये उपनिषदों ने जो आचार-संहिता तैयार की, वह भारतीय समाज में चिर काल से प्राण फूँकती रही है।

भारत के सामाजिक जीवन में प्राचीन काल से ही दर्शन का एक विशिष्ट पूर्ण स्थान रहा है। हर युग की सामाजिक व्यवस्था और समसामयिक दर्शन एक-दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं। भारतीय दार्शनिकों ने सिद्धांत और व्यवहार के सामंजस्य को उत्कृष्ट जीवन का मौलिक आचार माना है। यही कारण है कि भारत के सामाजिक जीवन में दार्शनिक विचारों को मानव-जीवन का प्रधान अंग मानकर, उनके अनुसार जीवन-यापन करने की चेष्टा की जाती रही है। भारतीय दर्शन के विश्लेषण से यह बात पृष्ठ होती है कि यह दर्शन व्यवहारिक तथा आचार प्रधान रहा है। भारतीय जीवन-शैली का सैद्धांतिक पक्ष उसका दर्शन है, तो उसका व्यवहारिक पक्ष उसका वर्णाश्रम-व्यवस्था। एक ओर वर्णाश्रम में भारत का दार्शनिक विचारों के व्यावहारिक प्रयोग की व्यवस्था की गई है, तो दूसरी ओर उसके सैद्धांतिक आदर्शों का स्वरूप वर्णाश्रम-व्यवस्था में स्थिर किया गया है। भारतीय समाजशास्त्रियों के दृष्टि में मानव को समाज के योग्य तथा मन से स्वस्थ बनाकर अध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करा देने की नैतिक पृष्ठभूमि तैयार कर देना ही भारतीय समाजशास्त्रियों का

लक्ष्य रहा है। इसी दृष्टि से भारतीय संस्कृति में नैतिकता एवं आध्यात्मिक नैतिकता का विशेष विवेचन हुआ है। वर्णाश्रम-जीवन-पद्धति के द्वारा दार्शनिक एवं आचार्य-शास्त्रीय लक्ष्यों की पूर्ति एक साथ हो जाती है।

याज्ञवल्क्य आदि आचार्यों का दार्शनिक दृष्टिकोण यही शिक्षा देता है कि मनुष्य-जीवन का सुख प्रेय की प्राप्ति नहीं, अपितु श्रेय की उपलब्धि ही उसका शाश्वत सुख है।

वस्तुतः बाह्य शरीर और आन्तरिक आत्मा-ये दो मानव-जीवन के आवश्यक तत्त्व हैं। किन्तु मानव वस्तुतः अपने शरीर से नहीं जीता है, बल्कि आत्मा से जीता है। आत्मिक जीवन ही मानव का वास्तविक जीवन है, शारीरिक भोग की सुखोपलब्धि के बीच आत्मा क्लान्त और बैचन रहती है।<sup>8</sup> जबकि आत्मिक प्रसन्नता की अवस्था में उसे भौतिक ऐश्वर्य विहिन जीवन भी नैसर्गिक, शान्त और शीतल प्रतीत होता है।<sup>9</sup> मानव आत्मतः अविरल शांति का पुजारी है। सभ्यता की ऊँचाई पर चढ़कर भी वह मानवता की गहराई में उतरने के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है। चन्द्रारोहन जैसी वैज्ञानिक उपलब्धियों से उसे हर्ष अवश्य होता है। किन्तु स्नेह, दया, करुणा, विनय, सहानुभूति इत्यादि आत्मिक गुणों के प्रदर्शन एवं उनके सान्निध्य साक्षात्कार में, उसे अपार आनंद और संतोष मिलता है।<sup>10</sup>

मानव स्वभावतः विरोध नहीं, मैत्री चाहता है। विश्व के कण-कण के साथ अपनत्व की स्थापना करना उसके आत्मिक जीवन का प्रधान लक्षण है। वह सदा संचालक बनकर जीना चाहता है बाधक बनकर नहीं।<sup>11</sup> सृष्टि और निर्माण का प्रत्येक क्षण उसका जीवन है। विध्वंस और विनाश का प्रत्येक क्षण उसका मरण है "सत्यं शिवं, सुन्दरम्" की ओर अग्रसर होना ही उसकी जीवन साधना का प्रधान लक्ष्य है।<sup>12</sup> वह क्षणिक सुख का नहीं, बल्कि शाश्वत शान्ति का उपासक है। उसे मात्र शारीरिक स्वतन्त्रता की ही नहीं, बल्कि आत्मिक मुक्ति की भी कामना रहती है। उसका प्रधान ध्येय है, आन्तरिक अन्धकार को दूर कर परम प्रकाश की ओर बढ़ना। मानव स्वभाव की गहराई में प्रवेश करने का स्पष्टतः ऐसा प्रतीत होता है कि वह मात्र जीने की नैतिकता नहीं समझता, बल्कि नैतिकता में अपना जीवन समझता है। वस्तुतः मानव स्वभाव का सच्चा और वास्तविक बोध उसकी लौकिक वासनाओं में नहीं होता, बल्कि उसके अध्यात्मिक जीवन के वैशिष्ट्य में होता है। मानव को प्रेम निश्चित रूप से प्रिय है, किन्तु श्रेय ही उसे अभीष्ट है। वह प्राकृतिक दासता की बेड़ी को काटकर आत्मविजय का मार्ग प्रशस्त करना चाहता है। इसकी सिद्धि के लिए जब वह वैयक्तिक संकीर्णता से ऊपर उठकर सम्पूर्ण मानव-समुदाय से तादात्म्य सम्बन्ध की स्थापना के निर्मित

आत्मविस्तार करता है। तब उसकी आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में आभाषित होती है। अपनत्व का अंकुरन आत्मिक जीवन का अमूल्य आधार है। मानव स्वभावतः सामाजिक है, मुक्ति का आकांक्षी है, एकांत का पोषक है और यही उसका धर्म है। मानव-समुदाय के इसी प्रकार के धर्मिक-जीवन के लिए हमारे प्राचीन समाजशास्त्रियों ने वर्णाश्रम धर्म की योजना बनाई थी।

### ब्रह्मचर्याश्रम का स्वरूप और उद्देश्य

आश्रम-व्यवस्था भारतीय संस्कृति की एक ऐसी विशिष्टता है जो विश्व की विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं में अपना एक पृथक् महत्त्व रखती है।<sup>13</sup> इस व्यवस्था में वैयक्तिक जीवन-प्रणाली का नियम का समाज के सदस्यों तथा उनके विभिन्न कार्य-कलापों के बीच समन्वय एवं अभियोजन का मार्ग प्रशस्त किया, जीवन से इस व्यवस्था का इतना घनिष्ट सम्पर्क था कि अनाश्रमी होना प्राचीन समाज में निन्दनीय समझा जाता था।<sup>14</sup> भारत के सुशोभित, मनोहर एवं पवित्र वनस्थलियों में ही आश्रम-व्यवस्था का आद्यन्त निहित था। आश्रम-जीवन के प्रथम भाग ब्रह्मचर्याश्रम का प्रारंभ वनस्थलियों से होता था तथा गृहस्थ के रूप में ग्रामीण-जीवन व्यतीत करने के बाद पुनः आश्रम-जीवन की परिसमाप्ति वनस्थलियों में ही होती थी। यही कारण है कि भारत में अधिकतर वनस्थलियाँ आश्रम के नाम से ही अभिहित की गई हैं।

ब्रह्मचर्याश्रम जीवन का प्रारंभ जिन आश्रमों में होता था, वहाँ बिना किसी भेदभाव के चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के लोग उन्मुक्त होकर निवास कर सकते थे। यहाँ आत्मकल्याण के साथ लोक-कल्याण की भावना विकसित होती थी। विश्वबन्धुत्व की सिद्धि में ही आश्रम-जीवन की सार्थकता मानी जाती थी। शौच, आचमन, स्नान, सन्ध्योपासना, सरलता, तीर्थसेवन, जप आदि का आचरण करता हुआ प्रत्येक आश्रमवासी अपने मन, वाणी और शरीर का संयम करता था तथा समस्त प्राणियों को ईश्वरमय देखता हुआ आत्मविस्तर के माध्यम से समदर्शिता को प्राप्त कर लेता था।<sup>15</sup>

प्राचीन ऋषि-मुनि प्रकृति की गोद में पलते थे तथा प्रकृति घटनाओं से प्राप्त अनुभव की आधारशिला पर मानव-जीवन को सँवारने का प्रयास करते थे। सम्भवः इसी क्रम में प्राकृतिक विकास में निहित स्वाभाविक विज्ञान से उन्हें मानव-जीवन धरा को चार स्वाभाविक अवस्थाओं में विभक्त करने की प्रेरणा दी और उन्होंने मानव-जीवन को ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम,

वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम के चार भागों में विभक्त कर दिया।

ब्रह्मचर्याश्रम की पहली अवस्था व्यक्ति के समक्ष जीवन-प्रभात के रूप में उपस्थित होती है, जहाँ से वह अपनी जीवन की तैयारी में लग जाता है। ब्रह्मचर्याश्रम वस्तुतः संयमन की अवस्था है, बलशाली बनने की अवस्था है, विद्यावान् बनने की अवस्था है, व्यक्ति के ऊर्जा को जगाने की अवस्था है तथा शरीर को भविष्य के लिए सशक्त एवं समर्थ बनाने की अवस्था है। इस आश्रम की सारी बातें प्रकृति के अन्य प्राणियों के प्रारंभिक जीवन में भी घटित होती हैं। व्यक्ति के जीवन में ब्रह्मचर्याश्रम का प्रारंभ उस समय होता है। जब वह उपनयन-संस्कार की समाप्ति के बाद गुरु के सम्पर्क में आकर सीधे सादा-जीवन व्यतीत करते हुए, अक्षय शक्ति संचय के लिए ब्रह्मचर्यापालन का व्रत लेता है। ब्रह्मचर्याश्रम इस धरणा पर आधारित है कि जो पूर्ण सशक्त होगा, वही अपने भावी जीवन को पूर्णतः भोग सकेगा।<sup>16</sup> पूर्ण भोग से ही पूर्ण त्याग का आविर्भाव होता है। निर्बल व्यक्ति आजीवन कामवासनाओं का शिकार होकर न तो भोग सकता है और न त्याग कर सकता है।<sup>17</sup> ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण जीवनधरा को पार करने के लिए ब्रह्मचर्याश्रम पूर्णतः आवश्यक प्रतीत होता है। यह व्यक्ति को सशक्त एवं अपने कर्तव्यपालन के योग्य बनाता है।

“ब्रह्मचर्याश्रम” पद “ब्रह्म”, “चर्या” और “आश्रम” शब्दों के योग से बना है, जिसका अर्थ होता है-वह अवस्था जिसमें ब्रह्म की चर्चा की जाय या ब्रह्म में डूबा जाय।<sup>18</sup> ब्रह्मा में डूबने का तात्पर्य है-अक्षय-शक्ति का संचय। शक्ति-संचय का ही दूसरा पक्ष है- कामवासनाओं का त्याग। कामवासनाओं की सिद्धि में शक्ति खर्च होती है, खर्च के लिए संग्रह आवश्यक है। ब्रह्मचर्याश्रम उतना त्यागमूलक नहीं है, जितना संग्रहमूलक। प्राचीन मनीषियों की यह धरणा रही है कि उसी व्यक्ति का जीवन सार्थक होता है, जिसके जन्म लेने से वंश और समाज की प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है।<sup>19</sup> इस लक्ष्य-सिद्धि के लिए उन्होंने अपनी संतान को उस तत्त्व का ज्ञान प्रदान करना चाहा, जो सम्पूर्ण विश्व का आधार बनकर इसका संचालन करता है। उनकी दृष्टि में वह तत्त्व “ब्रह्म” था। इसीलिए जीवन के प्रथम भाग ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिए उन्होंने विधन किया। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए उन्होंने मानव-कल्याण एवं समदर्शिता का प्रकाश देखा।<sup>20</sup> इसकी सिद्धि लिए ही उन्होंने चारों आश्रमों के क्रम का निर्धारण किया, जो उत्तरोत्तर व्यक्ति को ब्रह्मज्ञान के समीप पहुँचा देते हैं।

आश्रम-क्रम का पहला आश्रम ब्रह्मचर्याश्रम मात्र अपने नाम को ही सार्थक नहीं करता, बल्कि सभी आश्रमों के मौलिक लक्ष्य की

ओर संकेत भी करता है। इस आश्रम में व्यक्ति उस मार्ग पर आरूढ होता है, जो गृहस्थाश्रम एवं वानप्रस्थाश्रम से होते हुए संयासाश्रम में उसे ब्रह्मज्ञान तक पहुँचाता है। ब्रह्मज्ञान या ब्रह्मत्व की प्राप्ति में ही आश्रम-जीवन की सफलता मानी गई है। ब्रह्मचर्य के बिना ब्रह्मज्ञान असंभव है।<sup>21</sup> ब्रह्मचर्य-आश्रम में ब्रह्मचारी को गुरु के समीप रहकर गुरु की सेवा-शुश्रूषा द्वारा ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करता है। व्यक्ति को अपने माता-पिता से जो जन्म मिलता है, वह नश्वर होता है, किन्तु गुरु से जो जन्म मिलता है, वह सत्य और अमृत होता है।<sup>22</sup> ब्रह्मचर्य-आश्रम में गुरु से मात्र नवजीवन ही नहीं मिलता, बल्कि शाश्वत् जीवन का सूत्र भी मिल जाता है। गुरु-शिष्य सम्बन्ध की पवित्रता तथा उनके पारस्परिक आचार-विचार की शुद्धता ही ब्रह्मचर्याश्रम की वह धूरी है, जिसमें सम्पूर्ण आश्रम-व्यवस्था परिचालित होती है।

22. आचार्यस्तु यज्ञन्म तत्सत्यं वै तथामृतम्, सनत्सुजातीय - 317.

### सन्दर्भः

1. अथर्ववेद; पृथ्वी सूक्त- 12वाँ मंत्रद्वय
2. ऋग्वेद- 10/191/2
3. ऋग्वेद - 10/177/4
4. अथर्ववेद- 5/19/2
5. अथर्ववेद - 8.1.7
6. ऋग्वेद - 6.36.4
7. मुण्डोपनिषद् -2.7
8. रेलीजन एण्ड सोसाइटी, पृ.- 61
9. आपस्तम्भ धर्मसूत्र - 1/7/2
10. सत्य की ओर, पृ.- 23
11. ऋग्वेद-9/73/6, यजुर्वेद- 34/6
12. अस्तो मा सद्मय। ऋग्वेद- 10/25/1
13. कूर्मपुराण, प्राकृतसर्ग वर्णन, 2
14. ब्रह्मपुराण, खण्ड-1, 1/8
15. कूर्मपुराण, खण्ड-1, 2/42, श्रीमद्भागवत, अध्याय-17, स्कंध-34-35
16. शरीरं धर्मसर्वस्व रक्षणीयं प्रयत्नतः, शंखस्मृति- 17765
17. दुर्बलानां विशेषजः महाभारत शान्तिपर्व- 214/12
18. यदिदं ब्रह्मणो रूपं ब्रह्मचयमिति स्मृतम्, महाभारत शान्तिवं 2147
19. स जायेन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्, हितोपदेश, प्रस्ताविका श्लोक- 14
20. तत्त्वज्ञाच्चरन राजन प्राप्नुयात्परमां गतिम् महाभारत शान्तिपर्व- 214/1
21. सनत्सुजातीय- 32,14